पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा ३५६-३६५, ता. ८-४-१९८९
भिंड, प्रवचन नंबर P१५

ये श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है, उसका सर्वविशुद्धज्ञान नाम का ये अधिकार है। उसकी ३५६ नंबर की गाथा है। बात तो दो ही हैं, शॉर्ट में दो बातें हैं। एक बात तो ऐसी है कि आत्मा, शुद्धात्मा, शुद्धाशुद्ध परिणाम से सहित होने पर भी, रहित ही है। उत्पाद-व्यय से सहित होने पर भी रहित है। ऐसा द्रव्य सामान्य जो है, वो दृष्टि का विषय है, अनुभव का विषय है, श्रद्धा का विषय है। तो इसमें द्रव्य संबंधी....अनंत-अनंतकाल बीते, वो भूल हो गई। अनंतकाल से ऐसा मान रखा है कि आत्मा परिणाम से सहित है और आगम में, जिनागम में भी, परिणाम से सहित है, ऐसी बात हज़ारों, लाखों, करोड़ों स्थान पर आती है। एक स्थान पर नहीं। मगर परिणाम से सहित है आत्मा, वो व्यवहारनय का विषय है।

जैसे सोना है ना, सोना, तो अपने परिणाम से सहित होने पर भी, सोना परिणाम से रहित है। परिणाम से सहित होने पर भी, सोना परिणाम से रहित है क्योंकि परिणाम तो नाशवान है और सोना तो नित्य ध्रुव रहता है। तो परिणाम जो नाशवान है, वो सचमुच सोना है नहीं। ऐसे यह भगवान आत्मा अंदर विराजमान है, वो नवतत्त्व से सहित होने पर भी, बंध-मोक्ष के परिणाम से सहित होने पर भी...बंध-मोक्ष के परिणाम से सहित है वहाँ पूर्णविराम नहीं है, नवतत्त्व से सहित है वहाँ पूर्णविराम नहीं है। नवतत्त्व से सहित होने पर भी, जो नवतत्त्व के भेद से रहित है, वो शुद्धात्मा उपादेय है, तो वो उसका नाम द्रव्य का निश्चय (है)। उसका नाम क्या? द्रव्य का निश्चय। परिणाम सापेक्ष द्रव्य, वो व्यवहार का विषय है और परिणाम से निरपेक्ष जो ध्रुव परमात्मा है, वो दृष्टि का विषय है। उसके ऊपर दृष्टि जाते ही विकल्प टूटकर निर्विकल्प अनुभव आ जाता है। धर्म की शुरुआत होती है। तो ये द्रव्य के निश्चय में जो भूल हो, तो-तो उसको सम्यग्दर्शन होने का अवकाश ही नहीं।

परमात्मप्रकाश में गाथा है कि आत्मा पर्यायार्थिकनय से देखो तो उत्पाद-व्यय से सहित है, मगर (सहित) होने पर भी ये आत्मा, द्रव्यार्थिकनय से देखो तो उत्पाद-व्यय से रहित है; ऐसे ध्रुव परमात्मा का ध्यान चरम शरीरी तीर्थंकर भगवान ने जब मुनि अवस्था में थे, तब उसका ध्यान किया, तो केवलज्ञान हो गया। ऐसे द्रव्य का निश्चय पहले प्रथम में प्रथम समझने जैसी बात है। जो गुरुदेव ने ४५-४५ वर्ष तक वो दृष्टि का विषय दिया, उसमें, उसका लक्ष्य करने से साध्य की सिद्धि होती है। परिणाम से सहित आत्मा है, ऐसा श्रद्धान मिथ्यात्व है और परिणाम से रहित शुद्धात्मा है, उसका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। तो द्रव्य का निश्चय प्रथम में प्रथम समझना चाहिये। दो बातें हैं, तीसरी बात तो है ही नहीं।

द्रव्य का निश्चय, अभी द्रव्य का निश्चय आया ख्याल में। समझो आ गया, तो (भी) अनुभव क्यों नहीं होता है? उसके लिये एक दूसरी भूल रह जाती है। क्या भूल? कि पर्याय का निश्चय क्या है, वो जीव जानता नहीं है। द्रव्य का निश्चय कभी मन में आ गया, क्योंकि परिणाम नाशवान है, मैं अविनाशी

हूँ, इसके कारण परिणाम में अहम् नहीं करना, द्रव्य में अहम् करना। वो विचार में आ गया तो भी, ऐसा शुद्धात्मा अपने ज्ञान में प्रत्यक्ष अनुभव में क्यों नहीं आता है? उसमें थोड़ी भूल रह गई है अनंतकाल से कि, ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या है, वो बात रूचिपूर्वक सुनी भी नहीं (है)। ज्ञान की पर्याय का ऐसा ही स्वभाव है, पर को जाने, पर को जाने, पर को जाने। आगे बढ़ा थोड़ा, शास्त्र पढ़ा, तो ज्ञान स्वपरप्रकाशक, ज्ञान स्वपरप्रकाशक (ऐसा मानता है)। परप्रकाशक अज्ञान है और अनुभव के पहले स्वपरप्रकाशक भी अज्ञान ही है।

तो ज्ञान की पर्याय के निश्चय का स्वरूप क्या है? ये गाथा का मथाला (उपोद्घात) है, शीर्षक कि, ज्ञान की पर्याय का निश्चय, श्रद्धा की पर्याय का निश्चय, चारित्र की पर्याय का निश्चय, तीन प्रकार की पर्याय का निश्चय और तीन प्रकार की पर्याय का व्यवहार, बाद में विभाग किया है। तो प्रथम ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या है? यानि सचमुच ज्ञान की पर्याय किसको जाने तो निश्चय और किसको जाने तो अज्ञान (होता है)? आहाहा! ये बात ज्ञान की पर्याय के निश्चय की, अभी बात शुरू हो गई है फज़ल (सुबह) से।

तो दृष्टांत दिया आचार्य भगवान ने कि, कलई दीवार को सफेद करती है, वो व्यवहारी-जन कहते हैं। कौन कहते हैं? व्यवहारी-जन यानि अज्ञानी-जन। क्या कहा? व्यवहारी-जन कहते हैं कि कलई ने दीवार (को) सफेद कर दिया, कमरा सफेद कर दिया। तो, उसकी नज़र में से कलई गायब हो गई। कलई गई, कलई का अस्तित्व ही नहीं रहा। कलई सफेद होने पर भी वो पर्याय काली हो गई, तो-तो कलई का अस्तित्व रहता है। मगर, ये दीवार सफेद है, तो कलई गई। द्रव्य का ही व्यवच्छेद हो गया, दीवार रूप हो गई। उसका अस्तित्व नहीं रहता है। ऐसे, दृष्टांत पूरा हो गया। अभी सिद्धान्त।

इस जगत में चेतयिता है (चेतनेवाला अर्थात् आत्मा है) वह ज्ञानगुणसे परिपूर्ण अपने में ज्ञान है। प्रत्येक आत्मा में ज्ञान है अभी। ज्ञान नाम का गुण है, वो वर्तमान में परिपूर्ण है। पर्याय में भी ज्ञान है, मगर ज्ञान की पर्याय परिपूर्ण नहीं है। ज्ञानरूप तो है, मगर केवलज्ञान जैसे परिपूर्ण नहीं है। मगर ज्ञानगुण तो परिपूर्ण है, प्रत्येक आत्मा में। एक द्रव्य कहा आत्मा और उसका गुण का कहा (कि) ज्ञान नाम का गुण है।

जैसे सोने में पीलापन, चिकनापन गुण होता है ना, ऐसे आत्मा वस्तु है ना, तो वस्तु में गुण बसता है। तो ये गुण, ज्ञानगुण की प्रधानता से बात कहते हैं कि ज्ञानगुण है वो परिपूर्ण है, **स्वभाववाला द्रव्य है। पुद्गलादिका परद्रव्य व्यवहारसे उस चेतयिताका, (आत्माका) ज्ञेय (-ज्ञात होने योग्य) है।** ये ज्ञाता है और ये सब ज्ञेय हैं, ऐसे व्यवहारी-जन कहते हैं। क्या कहा? व्यवहारनय नहीं। व्यवहारी-जन ऐसा कहते हैं कि आत्मा ज्ञाता है और ये ज्ञेय है, उसका नाम मिथ्यात्व महापाप है। अज्ञान है, अध्यवसान हो गया।

तो अभी मिथ्यात्व का अभाव होकर सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो? आत्मदर्शन कैसे हो? कि सुन भाई! ज्ञान की पर्याय का निश्चय क्या है, वो ख्याल में आये बिना व्यवहार का पक्ष छूटता नहीं है। तो फ़रमाते हैं कि **पुद्गलादि व्यवहार से ज्ञेय हैं। अब, 'ज्ञायक (-जाननेवाला)'**, वहाँ तक आया था फज़ल (सुबह) में कि, मैं जाननेवाला हूँ और करनेवाला नहीं हूँ। ऐसा प्रस्ताव आया और सर्व अनुमति

से पास हो गया, भिण्ड के अंदर। हें? किसी ने 'ना' नहीं बोला। आहाहा!

बाबूजी:- सबसे पहले भिण्ड में पास हुआ।

उत्तर:- बाबूजी को ये शिविर देखकर प्रमोद आ गया। प्रमोद आता ही है। अभी आया कि ये सबसे पहले ये भिण्ड में प्रस्ताव पास हुआ। बाबूजी का शब्द है कि, 'मैं जाननहार हूँ मैं करनार नहीं हूँ' वो पहला, प्रस्ताव भी पहला इधर (आया) और पास करनेवाला भी पहला (इधर ही हुआ)। आहाहा! जो (जिसने) पास किया, वो पास हो जायेगा, तिर जायेगा। संसार से पार हो जायेगा, ऐसा मंत्र है। साधारण बात नहीं है। आहाहा! कोई पैसा कमाना हो ना, तो-तो कान में मंत्र देवे एक-एक को बुलाकर, कान में। किसी को बोलना नहीं, कहना नहीं। समझे? क्योंकि यही का यही मंत्र दूसरे को देना है, तो वो बोले तो दूसरा (बता देवे)। तू दूसरे को बोला? नहीं। कान में, किसी को कहना नहीं। मगर ये सर्वज्ञ भगवान का मंत्र तो खुल्ले-आम है। ओहोहो! कोई भी पाओ, कोई भी पाओ, आत्मा का अनुभव करो कि मैं जाननहार हूँ, करनार नहीं हूँ। ये वस्तु का स्वभाव है। आहाहा!

बाबूजी:- लूट सके तो लूट।

उत्तर:- हाँ! लूट सके तो लूट। आहाहा! ये लुटानेवाले तो अभी स्वर्ग में हैं, मगर उनकी प्रभावना अभी चालू है। (**जाननेवाला) चेतयिता, ज्ञेय जो पुद्गलादि परद्रव्य उनका है या नहीं?** कि जाननेवाला जो ज्ञायक है इधर....जीव तो इधर है और अजीव बाहर में हैं, पुद्गल आदि अजीव। तो उसको जो जानता है, ऐसा व्यवहारी-जन कहते हैं। समझे? (बस) बकते हैं, वैसा है नहीं। कहते हैं व्यवहारी-जन कि आत्मा पर को जानता है। समझे? ये शल्य है बड़ा। पर को मैं जानता हूँ, ये शल्य है। आहाहा! तो फ़रमाते हैं कि ये पर को जानते हैं, ज्ञेय को... ज्ञाता इधर और ज्ञेय वहाँ रखा। मैं ज्ञाता हूँ और ये ज्ञेय है, ये तो भ्रांति अनादिकाल से आई है। अनादिकाल की भ्रांति है। ज्ञाता ये और आत्मा ये ज्ञेय, वो व्यवहार, वो व्यवहार भी नहीं। क्या कहा? कि मैं ज्ञाता और वो मेरा ज्ञेय, वो व्यवहार भी नहीं (है)। मैं ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय, वो व्यवहार है, निश्चय नहीं है। उसमें अनुभव नहीं आता है। क्या कहा? कि मैं ज्ञाता मैं ही ज्ञेय वो भी व्यवहार। और मैं ज्ञाता और ये ज्ञेय, ये तो व्यवहार है ही नहीं; क्योंकि प्रमाणज्ञान से बाहर अपना कोई संबंध नहीं है। मेरा ज्ञेय मेरे से भिन्न नहीं होता है। जो भिन्न हो, सो मेरा ज्ञेय नहीं है। आहाहा!

इधर तो ज्ञाता रखा और ज्ञेय को इधर से निकालकर वहाँ स्थाप दिया। आहाहा! तो उपयोग बाहर ही रखड़ता (घूमता) है, अंतर्मुख होता नहीं है। तो मैं ज्ञाता और मैं ही ज्ञेय, वो भी व्यवहार है। मैं ज्ञाता और ये मेरा ज्ञेय, वो व्यवहार नहीं है। तो क्या दोष आयेगा? मैं ज्ञाता और ये मेरा ज्ञेय, ऐसा मानने में क्या दोष आयेगा? आचार्य भगवान ये विधि बताते हैं, सुन। **इस प्रकार ..... परद्रव्य उनका है.....** हाँ! **ज्ञेय है ..... अब 'ज्ञायक (-जाननेवाला) चेतयिता, ज्ञेय जो पुद्गलादिका परद्रव्य उनका है या नहीं'**? ये जाननेवाला जो ज्ञेय को जानता है, तो ज्ञेय का है कि नहीं है? जाननेवाला, जो ज्ञेय है सामने, उसको जानता है तो कहता है। तो ज्ञेय का ज्ञान है कि आत्मा का ज्ञान होता है?

बाबूजी:- ज्ञेय को जानता है या नहीं?

उत्तर:- ज्ञेय को जानता है कि नहीं? कि जानता ही नहीं (है)। आहाहा! ज्ञेय को मैं जानता हूँ, वो

तो भ्रांति है भैया! बड़ी भ्रांति है, लिखा है राजमलजी साहब ने। '**परद्रव्य उनका है या नहीं?'- इसप्रकार यहाँ उन दोनोंके तात्विक संबंध।** देखो! ज्ञाता-ज्ञेय का तात्विक संबंध क्या है? सच्चा संबंध क्या है? पारमार्थिक संबंध क्या है? आहाहा! वो बात झूठी है कि सच्ची है? तात्विक संबंध क्या है? वास्तविक क्या है संबंध, उसके साथ? कि ज्ञाता को ज्ञेय के साथ वास्तविक, तात्विक, पारमार्थिक संबंध क्या है? चलो! विचार करें! उसको, शिष्य को बैठाते हैं। समझे? परीक्षा करके, ज़रा समझा करके, जल्दी से समझाते हैं। **इसप्रकार यहाँ उन दोनोंके तात्विक संबंधका विचार करते हैं।**

ये ज्ञानी को विचार करने की ज़रूरत नहीं है। अज्ञानी जीव को समझाने के लिए भैया बैठ! कि आत्मा ज्ञाता और परद्रव्य मेरा ज्ञेय, इन दो के बीच में सचमुच वास्तविक, तात्विक, पारमार्थिक, सत्यार्थ, भूतार्थ संबंध क्या है? विचार करो। आहाहा! **विचार करते हैं:- 'जिसका जो होता है वह वही होता है**, **जैसे,** दृष्टांत भी आत्मा को समझाने के लिये दृष्टांत आत्मा का देते हैं। **जैसे, आत्माका ज्ञान होनेसे ज्ञान वह आत्मा ही है**; जैसे आत्मा का ज्ञान होने से ज्ञान वह आत्मा ही है। ऐसे, जिसका जो है वो उसका होता है। तो ज्ञेय का जो ज्ञान हो, तो ज्ञान ज्ञेयरूप हो गया, ज्ञेय का हो गया। राग का ज्ञान होता (नहीं है)। राग से भी नहीं और राग का भी ज्ञान होता नहीं (है)। ज्ञेय का भी ज्ञान नहीं और ज्ञेय से भी ज्ञान नहीं होता। ये व्यवहार का पक्ष अनादिकाल का है।

एक पर्याय से सहित माना तो कर्ताबुद्धि और मैं पर को जानता हूँ, वो भ्रांति, संवर का दोष। आत्मा परिणाम का कर्ता मानता है, ये जीवतत्त्व की भूल है और ज्ञान पर को जानता है, (ये) संवरतत्त्व की भूल है। तो-तो आस्रव हो गया। आहाहा! उपयोग क्रोधमय हो गया। क्रोध को जानता हूँ, आस्रव हो गया, संवर तो नहीं रहा। उपयोग में क्रोध तो नहीं है, मगर उपयोग क्रोध को जानता भी नहीं है। तब उपयोग, उपयोग में आ जाता है, तो संवर प्रगट हो जाता है। आहाहा!

दो भूल हैं। एक जीवतत्त्व सम्बन्धी भूल और एक संवर की भूल। मैं परिणाम का शुभाशुभभाव का कर्ता हूँ, वो जीवतत्त्व संबंधी भूल है। मैं, कर्म-नोकर्म की क्रिया (का) मैं कर्ता तो नहीं हूँ, मगर मैं निमित्त हूँ, वो जीवतत्त्व संबंधी भूल है। और ज्ञान की भूल क्या? मैं पर को जानता हूँ, वो ज्ञान की भूल है। यानि संवर की भूल है, संवर प्रगट नहीं होता है। जो ज्ञान पर को प्रसिद्ध करता है, तो आस्रव प्रगट होता है। मिथ्यात्व का आस्रव, भावबंध। आहाहा!

चेतयिता पुद्गलादिका हो तो क्या हो इसका प्रथम विचार करते हैं: 'जिसका जो होता है वह वही होता है, जैसे आत्माका ज्ञान होनेसे ज्ञान वह आत्मा ही है;'-ऐसा तात्विक सम्बन्ध जीवित, जीवित (विद्यमान) होनेसे, जैसे सीमंधर भगवान जीवंतस्वामी हैं। जैसे सीमंधर भगवान हैं ना, जीवंतस्वामी हैं। ऐसे आत्मा का जो ज्ञान है वो जीवंत है, वो कभी मरता नहीं है। कभी ज्ञेय का होता नहीं और आत्मा से ज्ञान छूटता नहीं। आत्मा ही है। आत्मा का ज्ञान तो आत्मा ही है। आहाहा! ये संबंध छूटता नहीं (है), ये तात्विक संबंध है। आत्मा का ज्ञान, वो ज्ञान और आत्मा एकरूप है, तात्विक संबंध छूटता (नहीं है) और ज्ञेय का ज्ञान कभी होता नहीं है। ज्ञेय का ज्ञान हो तो ज्ञान का अज्ञान होता है, ऐसा न लिखकर, इधर तो एक ऊँची बात फ़रमाते हैं कि जीव का ही नाश हो गया। यानि तू नास्तिक हो गया। मैं पर को जानता हूँ, मैं पर को जानता हूँ, ऐसा जिसका पक्ष है वो ज्ञान का अज्ञान नहीं, नास्तिक

हो गया। क्यों? कि जो जिसका होता है, वो वही होता है। राग का ज्ञान, तो ज्ञान राग हो गया, ज्ञान रहा नहीं। आहाहा!

बाबूजी:- आत्मा ही नहीं रहा।

उत्तर:- आत्मा कहाँ रहा ज्ञान गया तो? ज्ञान कहो कि आत्मा कहो, एक ही बात है।

बाबूजी:- आत्मा की हत्या हो गयी।

उत्तर:- आत्महत्या, आहाहा! आत्मघाती महापापी। समय-समय अभिप्राय में, श्रद्धा में ऐसा है कि मैं पर को जानता हूँ। अच्छा! पर को जानने में रुककर मेरे को आत्मदर्शन करना है.....तो पर को जानने का ये बंद हो जाये, रुकावट हो जाये। रुके कैसे? कि वैक्युम (vaccum) ब्रेक मार दे श्रद्धा में कि मैं पर को जानता नहीं हूँ। किसी की बात सुन नहीं, किसी की बात मत सुन। आहाहा! भैया! व्यवहार से तो है ना? आहाहा! व्यवहार से है, यानि ऐसा नहीं है (ऐसा मानना)। ऐसा नहीं है (ऐसा मानना)।

जो व्यवहारनय से निरूपण होता है, वो निरूपण असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना। यानि निश्चयनय द्वारा जो निरूपण आया, वो सत्यार्थ है, ऐसा मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना कि ज्ञान में ज्ञायक जानने में आता है, श्रद्धान कर ले। श्रद्धान कर और अनुभव न आवे, तो मेरे पास से ले लेना, ज्ञानी फ़रमाते हैं।

ये शिविर का आवाज़ जुदा-जुदा श्रोता के पास से आता है, हमारे पास। हम खुश हो गए कि ये मेरा और बाबूजी का इधर आना सफल हो गया। आहाहा! नहीं, आप (बाबूजी) जो नहीं आते, तो सोने में सुगंध नहीं मिलती। आपके (बाबूजी के) आने से सोने में सुगंध मिल गई। आहाहा! कमी रहती, जो आप (बाबूजी) नहीं पधारे (होते) इधर, तो कमी रहती। आहाहा!

तात्विक संबंध जीवंत, अपने तो अपना जल्दी, तुरंत हित करना है। और तो कुछ इस शिविर का प्रयोजन नहीं है। आहाहा! तो आचार्य भगवान करुणा करके फ़रमाते हैं कि जो तू मानता है कि मैं परद्रव्य को जानता हूँ, तो तू पररूप हो गया क्योंकि ज्ञान पर का नहीं है। ज्ञान तो आत्मा का है और कहता है कि मैं पर को जानता हूँ। आहाहा! व्यवृत्त हो जा, वहाँ से व्यावृत्त (दूर) हो जा।

ऐसा तात्विक सम्बन्ध जीवंत (विद्यमान) होनेसे, आत्मा का ज्ञान होने से, ज्ञान आत्मा है, ऐसा संबंध अनादि-अनंत है। स्वीकार करता है, वो सम्यग्दृष्टि हो जाता है। नकार करता है, मैं पर को जानता हूँ, तो मिथ्यादृष्टि समय-समय पर नया बनता है। जूना (पुराना) नहीं है, नया-नया, एक-एक समय पर। दूसरे समय समझे, तो सम्यग्दृष्टि हो जाता है। आहाहा! और पूर्व में मिथ्यात्व बंध गया, तो कहीं इसका stock नहीं है, गोदाम नहीं है। वो पर्याय तो व्यय हो गई, स्वाहा हो गई। पूर्व की पर्याय के मिथ्यात्व के पाप का तू क्यों विचार करता है? वो पाप का स्टॉक, गोदाम नहीं है आत्मा में। आहाहा! उसके निमित्त से ये जो कर्म बंधे हैं, वो तो भिन्न हैं, मेरे से। और एक-एक समय के जो परिणाम हैं, उस समय कर्ता-भोक्ता, उस ही समय कर्ता और उस ही समय भोक्ता। पूर्व पर्याय गई वो, सो गई। आहाहा! उसको मत याद कर।

अभी मैं कौन हूँ? आहाहा! मैंने पूर्व में बहुत पाप किया ना। कि तूने पाप किया ही नहीं क्योंकि

गोदाम नहीं है। वहाँ पाप कहाँ है? गोदाम हो तो-तो पाप का बैलेंस, बैलेंस-शीट निकलना चाहिए। आहाहा! पूर्व का पापी एक समय में धर्मी हो जाता है। आहाहा! एक समय का काम है। दृष्टि पलटती है, अंतर्मुख होता है, आहाहा! धर्मात्मा हो जाता है। अन्तर्मुहूर्त में दीक्षा ले लेता है। शुक्लध्यान की श्रेणी मांडकर केवलज्ञान होता है। किसको केवलज्ञान हुआ? इसको केवलज्ञान कैसे हो गया? वो तो पापी था ना। आहाहा! पापी पर्याय तो स्वाहा हो गई। भगवान आत्मा तो वैसा का वैसा रह गया। उसका, अंतर्दृष्टि करके आस्रव का व्यय होकर संवर प्रगट होता है। भूतकाल को याद मत कर। चार गति गई तो गई। आहाहा! स्वाहा हो गई। स्वाहा! पूर्व पर्याय है ही नहीं वर्तमान में, भावी पर्याय भी वर्तमान में नहीं है। भूत की चिंता मत कर, भावी की आशा मत रख। वर्तमान में (मैं) कौन हूँ? कि (मैं) ज्ञायक हूँ। तो क्या जानने में आता है? कि ज्ञायक ही, जाननहार जनाय छे, जाननहार जनाय छे। जाननहार (ही) जानने में आता है और मेरे को कोई जानने में आता (नहीं है)। तो व्यवहार का लोप हो जायेगा, हमको इष्ट है। व्यवहार का लोप होने से भी जो सम्यग्दर्शन होता है, तो लोप हमको इष्ट है। आहाहा! हें?

बाबूजी:- मोक्ष हो जायेगा।

उत्तर:- मोक्ष हो जायेगा। आहाहा!

बाबूजी:- व्यवहार कहाँ है?

उत्तर:- व्यवहार कहाँ है? वो तो गया। व्यवहार आ जाता है, व्यवहार टिकता नहीं है। आहाहा! व्यवहार का पक्ष, एक करने की बुद्धि और एक जानने की बुद्धि, मिथ्याबुद्धि है। कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि। आहाहा! टाइम हो गया।